International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 9 Issue 5, May 2019,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

हिंदी के उपन्यासों में मध्ययुगीन भारतीय समाज का आर्थिक शोषण

डॉ. प्रतिभा चौहान
सहायक प्रोफेसर (अध्यक्ष हिन्दी वभाग)
पं डत जवाहरलाल नेहरू पी.जी महा वद्यालय, फरीदाबाद

समाज व्यवस्था का मूलभूत आधार अर्थ है। भारतीय अर्थव्यवस्था का केन्द्र है कृषि और उद्योग–धंधे। आंचलिक उपन्यासों में अधिकांशः गांव के कृषक जीवन का चित्रण अधिक हुआ है। अतः कृषि प्रधान आर्थिक व्यवस्था का सूक्ष्मता से निरीक्षण किया है। कृषकों की आर्थिक दशा भूमि के स्वामित्व पर निर्भर करती है। स्वतंत्रता से पूर्व भूमि पर स्वामित्व जमींदारा के हाथों में था। जमींदार एक प्रकार के सरकारी प्रतिनिधि थे जिनका कार्य कर वसूल करना होता था परन्तु वास्तव में उन्हीं का भूमि पर स्वामित्व होता था। गांवों में कृषक वर्ग की निम्नतर स्थितियों का मूल कारण जमींदार एवं पूंजीपतियों द्वारा उनका आर्थिक शोषण रहा है। इस तथाकथित वर्ग ने धन एवं पद के बल पर सरकारी कर्मचारियों तथा राजनीतिक नेताओं का सहयोग प्राप्त कर शोषण की अजस्त धारा को प्रवाहित किया नागार्जुन का 'बलचनमा' उपन्यास जमींदार द्वारा कृषकों के शोषण की जीवंत गाथा हैं बलचनमा के पिता पर बाग से अमिया तोड़ लेने के कारण पाश्विक अत्याचार करना, पिता लालचंद को बांधकर मारना और फिर उसकी ज्वर से मृत्यु हो जाना, मंझले मालिक द्वारा बचलनमा का खेत अपने खेत में मिला लेना, मालकिन का आम की आधी जली चली से बलचनमा की पीठ दागना, माँ का जमींदार की चाकरी करना, बचलनमा से कोल्हू के बैल की भांति दिन–रात काम कराना इत्यादि जमींदारी शोषण के कुछ सटीक उदाहरण हैं। डॉ० विवेकी राय के शब्दों में ''मध्ययुगीन भारतीय समाज में आर्थिक शोषण के संदर्भ में जमींदार एक मिथ और प्रतीक की भांति गृहीत होते आये हैं।'' अपनी सुदृढ़ स्थिति का लाभ उठाकर ये नये–नये दाव–पेंच खेलते। गरीब मजदूरों की जिंदगी इन समृद्ध लोगों की गुलामी में ही बीत जाती। नागार्जुन के बलचनमा, रतिनाथ की चाची तथा बाबा बटेसरनाथ उपन्यासों में बेगार–प्रथा का घिनौना स्वरूप अनेक स्थानों पर उभर कर आया है। रियाया से बेगार लेना उनका सहज अधिकार था बाबा बटेसरनाथ का चित्र है– ''छोटी औकात के और नीची जाति के लोगों को तो खैर व कीड़े–मकोड़े समझता ही था, अच्छी–अच्छी हैसियत के भले खासे व्यक्तियों से वक्त–बेवक्त नाक रगड़वाता था जम्मीदार।'' जमींदारों के विलासी जीवन को न जाने कितने गरीब लोगों के खून–पसीने से सजाया जाता था। न केवल गांवों में अपितु जंगलों में निवास करने वाले आदिवासी भी इस घृणित प्रथा के शिकार हैं। बस्तर के आदिवासियों पर विरचित उपन्यास 'जंगल के फूल' में भी बेगार प्रथा का चित्रण हुआ हैं ''मैं भगेला था चौधरी नेताबार के गायता के घर और मेरे पहले मेरा तापे भी कहीं भगेला था। उसके पहले शायद उसका तापे भी भगेला रहा है। कहते हैं। पर आजा ने दो कोरी रूपये लिये रहे हैं उनके ब्याज के बदले मेरे आपा को भगेला बनना पड़ा। दिनभर छात्ती मारकर काम करता था उसका। बाहर की मजूरी थी करने नहीं जाने देता था और खाने को क्या मिलता था जानता है तू ? बेचारा पचास साल में मर गया। अब

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 9 Issue 5, May 2019,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

मेरा तापे भगेला बना, कर्ज जो चढ़ा था। वह भी इसी तरह चल बसा और अब मेरी बारी आई। बचपन से रहा उस लोन में, तो ऐसा मेल हो गया कि मैंने कभी यह नहीं समझा कि मैं भगेला हूँ। पर मेरे साथ गायता का बिवहार कडुवा बना रहा।'' गांव की निम्न जातियों को अक्सर शादी–ब्याह, जन्म–मरणा, रोग–व्याधि से सम्बद्ध व्यवहार के निर्वाह में औकात से बाहर जाकर खर्च करने पर मजबूर होना पड़ता है। इनके पास नियमित आय के साधन होते नहीं। इसलिए कर्ज का सहारा लेना पड़ता है। ऐसे जरूरतमंद लोग हर गांव में बहुसंख्यक होते हैं। इन लोगों की मजबूरी का फायदा उठा जमींदार इनसे बेगार कराते हैं। आजादी के बाद भी इस प्रथा में कोई कमी नहीं आई बेगार–प्रथा के प्रति इन ग्रामीणों के मन में आक्रोश तो भरा हुआ है पर वह इसके खिलाफ आवाज नहीं उठा पाते। देवेन्द्र सत्यार्थी के अनुसार– ''लोगों से बेगार लेना तो मालगुजार अपना अधिकार समझता है। हो सकता है कि बेगार के विरूद्ध आवाज सुनते ही धनपाल चिढ़ जाय और मुंशी दीनानाथ को हुक्म दे कि जितनी असामियों का लगान बाकी है, उन पर एकदम मुकद्दमें दायर कर दे इस तरह तो घर–घर कुर्की होने लगेगी। बहुतों के बैल कुर्क हो जायेंगे, फिर ये लोग खेती कैसे करेंगे? खेती तो खैर यों भी संकट में है, पिछले वर्ष इतनी कम वर्षा हुई कि लोग लगान के रूपये भी नहीं चुका सके। अब के फिर यही हाल होने वाला है।'' रल्हन गांव (पंजाब) के आर्थिक अभावों की चक्की में युगयुगांतरों से पिस रहे हरिजन अब भी मध्यकालीन यातनाओं की भोग रहे हैं। जिस भूमिक पर वे रहते थे, जिस जमीन को वे जोतते थे यहां तक कि जिन छप्परों में वे रहते थे, कुछ भी उनका नहीं था। चौधरी हरनाम सिंह सन्तु को सरेआम जूतों से पीटते हैं पर चमादड़ी में ऐसी घटना कोई नई बात नहीं है। ऐसा अक्सर होता रहता था। जगदीश चन्द्र के शब्दों में– ''जब किसी चौधरी की फसल चोरी कट जाती या बरबाद हो जातो या चमार चौधरी के काम पर न जाता या फिर किसी चौधरी के अंदर जमीन का मलकियत एहसास जोर पकड़ लेता'' तो वह अपनी साख बनाने और चौधरी मनवाने के लिए इस मुहल्ले में चला आता।'' बूढ़े और जवान सभी चौधरी के सामने ऐसे भयभीत एवं सिर झुकाए खड़े रहते जैस राजा के दरबार में खड़े हो। आजादी से पूर्व जब जमींदारों का राज था अब उनके खिलाफ गरीब जनता कानी उंगली तक न हिला सकती थी। बड़े घरों के क्या जवान, क्या बूढ़े बुतेरों की निगाह पाप में डूबी रहती थी। जमींदारों के पास समय ही समय था। खाली दिमाग शैतान का घर। नित नये अत्याचार के बहाने ढूढ़ते रहते। असूल–तहसील का काम गुमस्ता–बराहिल के हवाले, घर गृहस्थी की देख–रेख छुटभइयों के हवाले, सेवा टहल का काम गुमस्ता–बराहिल के हवाले, बाकी बचे बेटा–नाती, भाई–भतीजा, सार–सरबेटा। 'बचलनमा शतरंज का दृश्य है– ''सो बैठे–बैठे ताश पीटेंगे, शतरंज खेलेंगे, शहर जाकर सिनेमा देख आएंगे, बेकार मन शैतान का है। खान–पान और आराम की कमी नहीं, काम करेंगे नहीं। किसी की लड़की सयानी हुई नहीं कि निशाना साधने लग जाते हैं।'' भारत में जमींदारी प्रथा और महाजनी सभ्यता सामंतवाद का ही परिवर्तित रूप है। जमींदारों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होने के कारण उन्हें निम्न स्तरीय कृषकों व मजदूरों के साथ मनमाना व्यवहार करने की पूरी छूट थी। उत्तर प्रदेश के कछार अंचल की पृष्ठभूमि पर आधारित आंचलिक उपन्यास 'पानी के प्राचीर' में जमींदार गजेन्द्र बाबू के सीनियर तहसीलदार मुंशी दुक्खीलाल ग्रामीण कृषकों से कर वसूल करने का कार्य करते हैं। उनका कर वसूल करने का अमानवीय व्यवहार राम दरश मिश्र के

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 9 Issue 5, May 2019,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

शब्दों में– ''दरबार में बीसों किसान पकड़कर लाये गये थे। सबके सब फटे हाल, नंगे बदन, धूल–धूसरित सर वाले, मुंशी जी सबको बारी–बारी से मुर्गा बनाकर पीट रहे थे– ''मैं सबकी नस पहचानता हूँ, तुम सब साले चोर हो। बिना मारे तो सुनते ही नहीं हो– लात के देवता हो बात से क्यों मानोगे? दो–दो साल की लगान बाकी है। किसान मुर्गे की हालत में ही गिर पड़ा, उसका ललाट फूट गया। किसान कसाई के हाथ में पड़ी गाय की तरह निरीह आंखों से दया की भिक्षा मांग रहे थे।'' ग्रामीण भागों में प्रचलित बेगार प्रथा, मिल–मालिकों की शोषणवृत्ति, मजदूरों का दारिद्रय एवं मिल मजदूरों की हड़ताल की दरिद्रवश असफलता का सजीव वर्णन 'लोहे के पंख' उपन्यास में मंगरू मजदूर के माध्यम से मिलता है। जमींदारों की विश्रामप्रियता और उनका व्यवहार अमानुषिक ही रहता है। बात–बात पर मारना, डपटना तो आम बात है। जमींदारों की शान–शौकत का एक उदाहरण रामपुर ग्राम की पृष्ठभूमि पर आधारित सच्चिदानंद धूमकेतु के 'माटी की महक' में देखन को मिलता है। ठाकुर जगदम्बा सिंह इलाके के जमींदार थे। रूआव और दबदबा भी किसी से कम नहीं था– ''बगैर जूता खोले या सिर झुकाये कोई उधर से गुजरने की हिम्मत भी नहीं करता था। खर्चीले भी एक नम्बर के थे। राखी बांधने के दिन तो चारों दिगार के ब्राह्मण आकर राखी बांधते और दक्षिणा ले जाया करते। कभी सोलह कहार की पालकी से कम पैर नहीं रखा। पूर्णिमा की रात मुंगेर, बनारस और मुजफ्फरपुर की तवायफें आतीं।'' जगदम्बा सिंह की तरह ही रांगेय राघव के 'लोक परलोक' उपन्यास के महेन्द्र सिंह जमींदार भी हैं। काश्तकारों को हिदायत थी कि बारी–बारी से उसके दरवाजे बिना काम के भी आकर बैठा करे। गाय–भैंस के ब्याने पर पांच दिन के बाद से दस दिन तक आधा दूध कुंवर साहब के घर भेजा जाया करे। होली पर नजराना पह्यश्सू करना जरूरी था। अच्छे काश्तकार एक रूपया, मामूली आठ आना नजराना देत। इस तरह दो–ढाई हजार रूपया होली के मौके पर इकट्ठा हो जाता था।

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में कृषकों को निर्धनता, उनकी मजबूरी, बेकारी, शोषण और अत्याचार के अनेका चित्र बिखरे पड़े हैं। ये उपन्यास जमींदारों के आंतक व महाजनों के शोषण के जीवंत दस्तावेज हैं। 'बाबा बटेसरनाथ' में रूपहली गांव के जमींदार शत्रुमर्दनराय चालीस रूपये समय पर न देने के कारण आसामी को बांधकर लालचीटों से उसका शरीर छलनी करवाने में नहीं कतराते। इसी प्रकार 'नदी फिर बह चली' उपन्यास के जमींदार बाबू दुर्गालाल से तो समस्त गांव ही नहीं पलिस वाले भी आतंकित रहते ''कौन किसान या रैयत था उनकी जमींदारी में जिसके दरवाजे पर उनकी ओर से कुरकी या जब्ती के सम्मन न पहुँचे हो। दवा लाने के बिना किसी का बेटा भले ही मर जाय, मगर उनके बेगार को कोई कैसे टाल देता।'' ग्रामीण निर्धन जनता जिस जमीन को अपने खून पसीने से जोतती, उस पर उसका कोई अधिकार नहीं था। यह कैसी विडंबना थी। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत सरकार ने राजनैतिक स्वतंत्रता के साथ–साथ आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त कराने के लिए सुनियोजित योजनाओं का प्रारंभ किया। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य था सभी वगों की आर्थिक समृद्धि। आर्थिक विकास की इस नीति के तहत सर्वप्रथम जमींदारी उन्मूलन का कार्य किया गया। जमींदारी उन्मूलन के द्वारा खेतों पर कार्य करने वाले कृषकों एवं श्रमिकों को भूमि के स्वामित्व का अधिकार प्रदान किया गया। इस व्यवस्था की घोषणा होते ही जमींदार वर्ग सक्रिय हो

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 9 Issue 5, May 2019,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

गया। जमींदारों ने अनुचित साधनों तथा अपने आतंक का मनमाना प्रयोग कर स्थिति से निपटने का मार्ग ढूंढ़ ही निकाला। जमींदारी उन्मूलन के भय से ये लोग सार्वजनिक एवं वर्षों से एक ही किसान द्वारा जोती–बोई जा रहो जमीन को भी किसानों को चुप–चाप धन लेकर बंदोबस्त देने लगे। नागार्जुन ने लिखा है– ''जमींदारी उन्मूलन शुरू किया सरकार ने। जमींदार तो पहले ही से चौकस थें। अब उन्होंने सार्वजनिक उपयोग भी भूमियों को चुपके–चुपके बेचना आरंभ कर दिया। टुनार पाठक आऐर जैनरायन झा ने राजा बहादुर से बरगदवाली यह जमोन और उधर वाली पुरानी पोखर चुप–चाप बंदोबस्त में ले ली।'' जमींदार खत्म हो गये, महाजन टूट गये, लेकिन गांव के किसानों और मजदूरों में क्या कोई भी परिवर्तन आया है? जमींदार जब तक रहे, उन्हें पीसते रहे। जमींदारी जब टूटी तो उन्होंने उसके टूटने के पहले ही अपने खेत बेच दिये। 'सत्ती मैया का चौरा' उपन्यास का मुन्नी इसका विश्लेषण करता हुआ कहता है– ''कितने ही किसान तो जमींदारों के खेत निकाल लेने के कारण अब मजूर बन गये हैं, और यहां–वहां मजूरी की खोज में भटक रहे हैं। तुम किसी भी किसान या मजूर को ले लो, उसके पर जाकर देखों, उसके तन के कपड़े को देखों, उससे पूछकर समझो कि उसमें क्या परिवर्तन आया है? जमींदार न रहे तो अब स्थानीय कांग्रेस नेताओं ने उनकी जगह ले ली है और किसानों पर वे उन्हीं की तरह हुकूमत करते हैं।'' आज सभी टूटे हुए जमींदार और महाजन नेता क्यों हो गये हैं? रूप बदलकर वे समाज में अनाचार पहले की ही तरह कायम रखना चाहते हैं। 'वरूण के बेटे' उपन्यास का अंचल गरोरवर और उससे पश्चिम कोस भर का इलाका देपुरा मैथिल जमींदारों के अधिकार में था। अब लेकिन जमींदारी उन्मूलन कानून के मुताबिक रैयतों से जमीन का लगान या मालगुजारी वसूल–तहसील करने के हकों से वंचित हो चुके थे परन्तु– ''व्यक्तिगत जोत की जमीन, बाग–बगीचे, कुआं... चभच्च और पोखर, देवी–देवता के नाम चढ़ी हुई जायदाद, चारागाह, पतर–परांत, नदियों के पाट और तटवर्ती भूमि जैसी कुछ एक अंचल संपत्तियों के मामले में जमींदारी उन्मूलन कानून ने भूस्वामियों को खुली छूट दे दी। नतीजा यह हुआ कि पोखरों और चारागाहों तक को वे चुपके–चुपके बेचने लगे 'आज लगते झोंपड़ी निकले सो लाभ' हर विधि गरीबों को ही पिसना है, मरेंगे, जरेंगे, मछलियां पकड़ेगे पर मजा दूसरे मारेंगें। जमींदारी उन्मूलन किया गया था लोगों के फायदे के लिए लेकिन जमींदार–जमींदारों का मुखौटा उतारकर भू–स्वामियों का मुखौटा चढ़ गए। शोषण तो फिर भी होता रहा केवल उसका रूप बदल गया। 'सती मैया का चौरा' उपन्यास के मन्ने और जुबली ने भी जाने कहां से आगम को सूंघ लिया था। जुबली ने अन्य मुसलमानों को इकट्ठा कर एक फारम खेलने की तजबीज पेश की। फारम रजिस्ट्री होकर खुल गया और जुबली ने फारम के बहाने अपने और दूसरे मुसलमानों के खेत असामियों से निकालकर फारम में मिला लिये। वह फारम कमिटी का सेक्रेटरी हो गया। अपने खेती के लिए तीसेक बीघे खेत निकल कर मन्ने ने धीरे–धीरे बाकी खेत बेच दिये। जमींदारी उन्मूलन के पश्चात् भी देशी रियासतों, कारिन्दों, ठाकुरों इत्यादि का शोषण निरंतर जारी है। इनका अब भी क्षेत्र–विशेष में दबदबा बना हुआ है। जगदीशचन्द्र के उपन्यास 'धरती धन न अपना' में भी चमादड़ी के लोग बिना पैसे लिये मजूरी करने से इंकार कर देते हैं परन्तु काफी दिनों तक भी ठाकुर वर्ग जब नहीं झुकता, तो भूख की मार चमादड़ी के लोगों को तोड़ ही देती है, परन्तु एक संघर्ष की शुरूआत तो हो ही जाती है। ऐसी ही

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 9 Issue 5, May 2019,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

छुटपुट घटनाएं शोषक और तानाशाही शक्तियों के खिलाफ जनमत तैयार करती है। धीरे–धीरे शोषक वर्ग पतनोन्मुख और शोषित वर्ग विकासोन्मुख होता जा रहा है। 'बलचनमा' उपन्यास में भी नागार्जुन का उद्देश्य बलचनमा के जीवन संघर्ष के चित्रण द्वारा समाजवादी चेतना की ओर निर्देश करना है। 'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास के जैकिसुन, जीवनाथ, बीरभद्र और बाबू श्यामसुंदर वकील नयी पीढ़ी के युवक हैं, जो संयुक्त संगठन की शक्ति से गांव में प्रगतिशील विचारों का प्रचार करते हैं। जमीन के बेदखली के खिलाफ गांव के लोगों का संयुक्त मोर्चा, पास–पड़ोस के किसानों से इस संघर्ष में मदद लेना और जरूरत पड़े तो उन्हें भी मदद पहुँचाना – उनकी जनवादी चेतना का ही संकेत देते हैं। 'वरूण के बेटे' उपन्यास के मछुआरे भी अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए समस्त शोषक वर्ग से संघष करते हैं। इस वर्ग में दारोगा, अंचलाधिकारी और मजिस्ट्रेट जैसे लोग भी शामिल है। 'दुःखमोचन' उपन्यास में तो घरेलू मजदूरिनों में भी वर्ग चेतना व्याप्त है– ''अब वे छः आने माहवारी पर काम नहीं करना चाहतीं। जमाना तेजी से बदल रहा है बबुअन।'' वे काम बंद करके हड़ताल की सूचना दे देती है। निष्कर्षतः गांवों में शोषण के खिलाफ वर्ग–संघर्ष विकसित हो रहा है। कहीं यह जमींदारों के विरोध में हैं तो कहीं नौकरशाही के विरोध में। लेकिन फिर भी शोषण निरंतर जारी हैं।

इन आंचलिक उपन्यासों में समस्याओं के तार्किक–वैचारिक हल नहीं हैं क्योंकि अंचलवासियों का जीवन नागरी नहीं है जो शुद्ध तर्क दे सके। उनमें एक चेतना है, एक जज्बा है, जिसके तहत वह जीते एवं संघर्ष करते हैं। आंचलिक उपन्यासों के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति एवं समाज के संघर्ष की समस्या उत्पन्न होती है। संघर्ष का मूल कारण है वर्गीय शोषण। उपन्यास के माध्यम से लेखक अंचल के शोषित समाज का असंतोष, उसकी संघर्षेच्छा तथा विरोध के स्वर को स्पष्ट करता हैं। शोषण एवं अत्याचार पर आधारित जीवन चक्र की संवेदना परिस्थितियों को बदलने जैसा कल्पनाजन्य आदर्श प्रस्तुत नहीं करती। अतः समाधानात्मक पक्ष आदर्शवादी न होकर व्यावहारिक हैं शोषण वर्ग की अधिकार सीमा एवं पददलितों के उत्पीड़न की समस्या इन कथाकारों के विचार विश्लेषण एवं तर्क का विषय है। समाज की अन्य समस्याओं के मूलभूमिक यही शोषण है। अतः सामाजिक शोषण को समाप्ति की अनिवार्यता पर बल देते हैं। आंचलिक उपन्यास अंचल वासियों के जीवन के विभिन्न परिपार्श्वों में शोषणचक्र की विभिन्न परिपार्टियों का स्पष्टीकरण हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. विपिनचन्द्र : भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृ० 327।
2. सुमीत सरकार : मार्डन इंडिया, पृ० 325।
3. जी० आर० सीले : इंग्लैण्ड का प्रसार, 1883।
4. रजनी पामदत्त : आज का भारत, पृ० 269।
5. जे० सी० बागल : हिस्ट्री ऑफ दि इंडियन एसोसिए"ान, पृ० 154।
6. सी० जे० ओ० डोनेल : द कॉजेज ऑफ प्रेजेंट डिसकंटेंट इन इंडिया, पृ० 68।
7. कौले"वर राय : आधुनिक भारत, पृ० 378।